दीक्षा से दक्ष

जीवन में पूर्ण लक्ष्य प्राप्ति का साधन है-दीक्षा क्योंकि दीक्षा, दक्ष बनाता है।

“जब शिव स्वयं मार्ग बनते हैं, तब सद्गुरु के रूप में प्रकट होते हैं।”

भारतीय अध्यात्म में शिव देवता नहीं, बल्कि आदि-चेतना, योग, ज्ञान और मुक्ति के दाता भी हैं। शिव का एक अत्यंत गूढ़ स्वरूप है-दक्षिणामूर्ति, जहाँ वे किसी राजसी वैभव या चमत्कार के माध्यम से नहीं, बल्कि मौन बैठकर ऋषियों को आत्मज्ञान प्रदान करने वाले आदि-गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हैं। दक्षिणामूर्ति परंपरा ने शिव को गुरु रूप में देखा है जो बाहरी ज्ञान से आगे आत्मतत्त्व का बोध कराते हैं। जो ज्ञान साधक के लिए अभी अमूर्त और अगम्य है, वे जीवित गुरु के साधनात्मक तपोबल द्वारा साकार होता है। **“जहाँ अज्ञान का अंत और जागरण का आरम्भ होता है, वहीं शिव का गुरु स्वरूप प्रकट होता है; और जब वही गुरु-तत्त्व किसी जीवंत मार्गदर्शक के माध्यम से साधक का हाथ पकड़ता है, तो वह सद्गुरु कहलाता है।”**

विवेकानंद के जीवन में श्रीरामकृष्ण परमहंस का गुरु रूप में महत्वपूर्ण स्थान था। श्रीकृष्ण सांदीपनि ऋषि से ज्ञान प्राप्त कर योगेश्वर कहलाये, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने विश्वामित्र से ज्ञान प्राप्त किया। गुरु का मार्गदर्शन अनुभव में सीमित नहीं है अपितु वह साधक के विचार, दृष्टिकोण और जीवन की दिशा को भी प्रभावित करता है।

दीक्षा सामान्य मनुष्य के जीवन का आरंभ है, जहाँ साधक गुरु से केवल शब्द नहीं, बल्कि साधना की दिशा ग्रहण करता है। गुरु का मार्गदर्शन, शास्त्रों का ज्ञान और साधक का निरंतर अभ्यास, इन तीनों के समन्वय से साधनात्मक यात्रा और भी गहरी हो जाती है। वैसे तो आध्यात्म और तंत्र में दीक्षा के अनेक स्वरूप हैं और प्रत्येक स्वरुप में उसके संबंधित शास्त्रीय संदर्भ में समझना आवश्यक है। गुरु से मंत्र लेना ही दीक्षा नहीं होता, बल्कि अपने भीतर ज्ञान को ग्रहण करने की ‘पात्रता का विकास’ करना दीक्षा का चिन्तन है। पात्रता का अर्थ है-अपने मन, विचार, आचरण और चेतना को ज्ञान ग्रहण करने योग्य बनाना, दक्ष बनना।

कुलार्णव तन्त्र के चतुर्दश उल्लास में कहा गया है-

विना दीक्षां न मोक्षः स्यात्तदुक्तं शिवशासने।
सा च न स्याद्विनाचार्यमित्याचार्यपरम्परा॥
तस्मात् सिद्धान्तं सम्प्राप्य सम्प्रदायादिहेतुभिः।
अन्तरेणोपदेष्टारं मन्त्राः स्युर्निष्फला यतः॥

मनुष्य के भौतिक व साधनात्मक जीवन में दीक्षा केवल औपचारिकता मात्र नहीं है, बल्कि साधना को सार्थक और फलदायी बनाने वाली अनिवार्य कड़ी भी है। दीक्षा के बिना चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति असंभव है। लेकिन आगे एक और महत्वपूर्ण बात कही गई है-दीक्षा भी सद्गुरू के बिना संभव नहीं है। अर्थात् साधना-पथ में गुरु केवल मंत्र बताने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि साधक को साधना के सही व उचित मार्ग से जोड़ने वाला माध्यम भी है।

जब कोई साधक गुरु से दीक्षा प्राप्त करता है, तो उसे मंत्र, साधना-विधि और गुरु का मार्गदर्शन मिलता है। लेकिन केवल मंत्र मिल जाने से साधना का पूरा फल अपने आप प्राप्त हो जाये, ऐसा आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए: एक पात्र में यदि पहले से गंदा पानी भरा हुआ है और उसमें आप स्वच्छ जल डालते जायें, तो वह जल भी **दूषित** हो जायेगा। अतः पहले पात्र को साफ करना आवश्यक है। इसी प्रकार साधक के भीतर यदि **अहंकार**, अत्यधिक अस्थिरता, द्वेष और पूर्वाग्रह भरे हुये हैं, तो उसे किसी ज्ञान को गहराई से ग्रहण करने में कठिनाई अनुभव होगा। इसे एक उदाहरण से समझते हैं।

दो साधकों को एक ही गुरुमंत्र प्राप्त हुआ-

।।ॐ परम तत्वाय नारायणाय गुरुभ्यो नमः।।

पहला साधक उसी गुरू मंत्र का उच्चारण करता है, लेकिन उसका मन निरंतर दूसरी चिंताओं, कामनाओं और वासनाओं में भटकता रहता है। तथा वह नियमित रुप से मंत्र जप और साधना पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है। वहीं दूसरा साधक मंत्र का अर्थ समझने का प्रयास करता है, नियमित मंत्र जप व साधनायें सम्पन्न करता है, अपने आचरण को देखता है और गुरु के निर्देशों पर चिंतन करता है। एक ही मंत्र, लेकिन दो साधकों की अलग-अलग अनुभुतियां। दोनों के पास एक ही मंत्र है, लेकिन उनकी एकाग्रता, समझ, साधना अलग-अलग हैं।

आज की भागदौड़ भरी और तनावपूर्ण जीवनशैली में दीक्षा का महत्व और भी बढ़ गया है। वर्तमान समय में मनुष्य का मन अत्यधिक विचलित, तनावग्रस्त और नकारात्मकता से घिरा रहता है। सामान्यतः मनुष्य के भीतर तीन बड़ी बाधाएँ होती हैं- अज्ञान, अहंकार और अस्थिरता। गुरु का मार्गदर्शन इन तीनों के सामने एक दर्पण की तरह काम करता है। शिष्य जब स्वयं को देखता है तो उसे अपने भीतर की कमजोरियाँ दिखती हैं और वह इन्हीं कमजोरियों और कुस्थितियों को समाप्त करने हेतु प्रयत्नशील हो जाता है। अणु से विराट बनने की प्रक्रिया, मनुष्य से देवत्व बनने की प्रक्रिया और मूलाधार से सहस्त्रार तक पहुंचने की क्रिया केवल गुरु को ही ज्ञात होता है, इसलिये ही जीवन का आधार केवल गुरु को ही माना गया है।

दीक्षा द्वारा असंभव दिख रहा कार्य भी संभव हो जाता है। जीवन में ग्रहणशीलता के साथ-साथ साधना में सफलता का द्वार खुलता है। गुरु का कार्य शिष्य को उसके स्वभाव, क्षमता, संस्कार और साधना-सिद्धि के पथ पर आगे बढ़ाना है। गुरु दिशा दिखाते हैं कि साधक को किस क्षेत्र में जाना है, उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य क्या है? फलस्वरुप शिष्य के भीतर धीरे-धीरे परिवर्तन शुरु हो जाता है। कुलावर्ण तंत्र में दीक्षा के प्रभाव के बारे में बताते हुये भगवान शिव, भगवती पार्वती से कहते हैं-

यया चोन्मीलितात्मानो भवन्ति पशवः शिवाः ।
सा दीक्षा ह्युदिता देवि पशुपाशविमोचिका ॥

दीक्षा ही 'पशुता' अर्थात् बंधनयुक्त जीव की आत्मचेतना में सम्मिलित होकर उसे शिव स्वरूप बनाने की ओर अग्रसर करती है, वह पाश मुक्त होता है। श्लोक कहता है- "भवन्ति पशवः शिवाः।" अर्थात् जो व्यक्ति पहले पशु था, वही व्यक्ति शिव तत्व को प्राप्त हो जाता है। दीक्षा पशुता रुपी बंधन हटाकर साधक की चेतना में वृद्धि करता है जिसके फलस्वरुप वह अपने उच्चतम, दिव्य चेतन अवस्था को प्राप्त करता है। निष्कर्षतः सद्गुरु साधक को विधिपूर्वक दीक्षा देकर साधना के उस मार्ग में प्रवेश कराता है जिसके द्वारा उसके जीवन के समस्त कुस्थितियों का क्षय होता है। दीक्षा ही जीवन का आरंभ है, लक्ष्य प्राप्ति का प्रथम चरण है, उसका वास्तविक अर्थ साधक के भीतर समझ और आचरण में प्रकट होता है।

जायते देवताभावः परानन्दमयः शिशोः ।
एषा वर्णमयी प्रोक्ता दीक्षा पाशहरा प्रिये ॥

कुलावर्ण तंत्र में भगवान सदाशिव महादेव दीक्षा के बारे में बताते हुये कहते हैं- "हे प्रिये! इस वर्णमयी (अर्थात् मंत्राक्षर) दीक्षा के द्वारा साधक के भीतर देवत्व भाव का जागरण सम्भव है और वह परमानंद तत्व से परिपूर्ण हो जाता है। दीक्षा के द्वारा ही साधक के सांसारिक एवं मानसिक बंधनों से दूर होता है।"

इसे थोड़ा और गहनता से समझने का प्रयत्न करते हैं। उक्त श्लोक में तीन प्रकार के तत्वों का वर्णन आता है-

1. देवत्व भाव का जागरण: किसी व्यक्ति की नाल उसके जीवन में दो बार काटी जाती है। प्रथमतः जब उसका जन्म होता है और दूसरा जब वह सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण करता है। सद्गुरू दीक्षा के माध्यम से साधक को अपने तपस्या का अंश प्रदान करते हैं। उस शक्ति द्वारा साधक के भीतर सुप्त अवस्था में व्याप्त देवत्व भाव जागृत अवस्था प्राप्त करता है।

2. परमानंद अवस्था की प्राप्ति: परमानंद अवस्था की प्राप्ति का तात्पर्य जीवन में शाश्वत, असीम और सर्वोच्च आनंद का अनुभव करना, जिसके बाद संसार का बड़े से बड़ा दुख भी मनुष्य को विचलित नहीं कर पाता। इस अवस्था को प्राप्त करने के उपरान्त साधक सांसारिक सुख-दुःख से ऊपर उठकर अनहद आनंद, पूर्णता, और ईश्वरत्व की सर्वोच्च चेतना अवस्था को प्राप्त करता है। वह गृहस्थ जीवन में लिप्त रहते हुये पूर्णतः सन्यासी होता है।

3. पाशहरा दीक्षा (समस्त प्रकार के बंधनों से मुक्ति): पाशहरा मुलतः दो शब्दों से मिलकर बना है। 'पाश' और 'हरा'। 'पाश' का अर्थ बंधन, फंदा या वह माध्यम जिससे कोई बंधा हो। तंत्र शास्त्र में इसका अर्थ मनुष्य की सीमित चेतना और उसे संसार की वासनाओं में बाँधने वाले तत्वों के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। और 'हरा' का तात्पर्य- 'हरण, दूर अथवा नष्ट करने वाला।' अर्थात् ऐसी दीक्षा जो बंधनों तथा दोषों को नष्ट करने वाली हो।

पाशहरा बंधनों को दूर करने वाला है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दीक्षा से सभी बंधन तुरंत समाप्त हो जाते हैं। ये बंधन अज्ञान, आसक्ति, अहंकार और सीमित चेतना से जुड़े होते हैं। जो धीरे-धीरे ही समाप्त होते हैं।

उक्त संक्षिप्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि दीक्षा के बिना साधक के जीवन में पूर्णता आ ही नहीं सकता। यदि "दीक्षा" शब्द की विवेचना की जाये तो हजार पृष्ठों का एक ग्रन्थ भी लघु प्रतीत होगा।